जुलाई २०१३

क़ीमत रु १२/-

दादा भगवान परिवार का

अक्रम एक्सप्रेस

गुरु-शिष्य

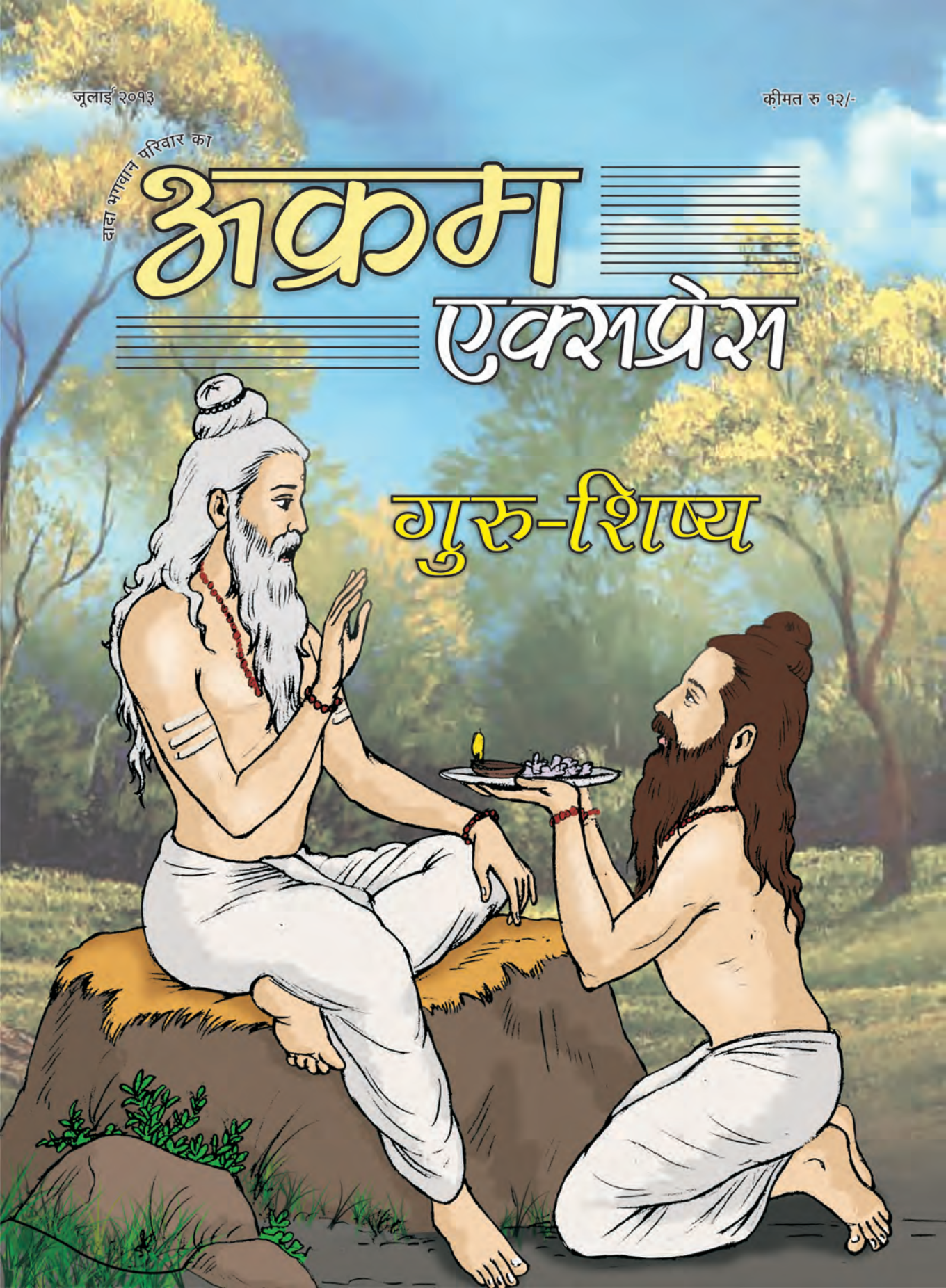

अनुक्रमणिका

दादाजी कहते हैं ३
यह तो नई ही बात! ४
अमरदास - रामदास ६
दत्तात्रेय ७
रामकृष्ण परमहंस - स्वामी विवेकानंद ८
अंधकार से प्रकाश की ओर १०
सहजानंद स्वामी १२
महावीर भगवान और गौतम स्वामी १४
श्रीमद् राजचंद्र - अंबालालभाई १५
मीठी यादें १६
गुरुपूर्णिमा १८
महापुरुषों के विचार... गुरु के लिए... १९
किड्स केम्प की झलक २०

अक्रम एक्सप्रेस

गुरु-शिष्य

संपादकीय

बालमित्रो,

अपनी संस्कृति में लोग एक दूसरे से अनेक भावनात्मक संबंधों से जुड़े हुए हैं, उनमें से एक गुरु और शिष्य का भी हैं। गुरु-शिष्य का संबंध मतलब निःस्वार्थ प्रेमसंबंध, अभेदता का संबंध, आधीनता और समपर्ण का संबंध।

ऐसे पवित्र संबंध में न तो कहीं दाग दिखाई देना चाहिए और न ही पड़ना चाहिए। उसके सामने चेतावनी देते हुए परम पूज्य दादाश्री कहते हैं कि, गुरु में लक्ष्मी और विषय-विकार संबंधित किंचित्मात्र भी अशुद्धता नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसा दिखाई दे तो वहाँ से खिसक जाना।

ऐसे पवित्र संबंध के कई आदर्श उदाहरण इस अंक में दिए गए हैं। गुरु की ज़रूरत क्यों है, सच्चा शिष्य कैसा होना चाहिए, गुरु शिष्य की गढ़ाई किस तरह करता है, शिष्य को गुरु के प्रति कैसा भाव रखना चाहिए आदि की सुंदर समझ छोटी-छोटी कहानियों में बुनी गई है।

तो आओ, इस सुंदर अंक का मज़ा लें और सच्चे शिष्य बनने की प्रेरणा लें।

- डिम्पल महेता

संपादक:
डिम्पल महेता
वर्ष : १ अंक: ४
अखंड क्रमांक: ४
जुलाई २०१३

संपर्कसूत्र
बालविज्ञान विभाग
त्रिमंदर संकुल, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद - कलोल हाइवे,
मु.पो. - अडालज,
जिला . गांधीनगर - ३८२४२१, गुजरात
फोन : (०७९) ३९८३०१००

Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj-382421.
Dist-Gandhinagar.

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj-382421.
Dist-Gandhinagar.

Printed at
Amba Offset
Basement, Parshvanath Chambers, Nr.RBI,
Usmanpura, Ahmedabad-14.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj-382421.
Dist-Gandhinagar.

वार्षिक सदस्यता(हिन्दी)
भारत :१२५ रुपये
यु.एस.ए. :१५ डॉलर
यु.के. :१० पाउन्ड
पाँच वर्ष
भारत : ५०० रुपये
यु.एस.ए. : ६० डॉलर
यु.के. : ४० पाउन्ड
D.D/ M.O 'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम पर भेजें।

दादाजी कहते हैं

गुरु मतलब गाइड, जिनका हम अनुसरण करें। जिनसे मार्ग दर्शन लिया हो, जहाँ से लाभ हुआ हो, वे सभी गुरु कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी जहाँ से कुछ भी प्राप्त हो, वे अपने गुरु। ऐसा?

दादाश्री : हाँ, गुरु मतलब प्रकाश। गुरु की तो जहाँ-तहाँ कदम-कदम पर ज़रूरत पड़ती है। गुरु नहीं हों तो रास्ते पर चलते-चलते सात रास्ते आएँ, तो आप कौन-से रास्ते जाओगे?

प्रश्नकर्ता : वह तो मन कबूल करे, वही रास्ता पकड़ेंगे।

दादाश्री : नहीं, वह रास्ता नहीं कहलाता, किसी को गुरु बनाकर पूछना पड़ेगा कि मैं किस रास्ते जाऊँ? गुरु के बिना कौन समझाएगा? किसी भी व्यक्ति को गुरु बनाओगे तो भी चलेगा। जो आपसे बड़े हों और आपका ध्यान रखते हों, जिनके लिए आपको लगे कि "मेरा दिल इन्हें कबूल कर रहा है" तो वहाँ बैठ जाना और उन्हें गुरु बनाना। आपसे बड़े हैं, तो आपको आगे ले ही जाएँगे। शिष्य से अपने आप कुछ नहीं हो सकता। वह तो गुरु की कृपा से आगे-आगे बढ़ता जाता है। क्योंकि वह गुरु की आज्ञानुसार चलता है, इसलिए उसे दुःख नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए शिष्य को क्या करना चाहिए?

दादाश्री : कृपा-दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए। कृपा-दृष्टि यानी क्या? यदि गुरु के कहे अनुसार चले तो गुरु प्रसन्न रहेंगे। उसी को कृपा-दृष्टि कहते हैं। यदि कहे से उल्टा करे तो नाराज हो जाएँगे। शिष्य को तो कृपा प्राप्त करने के लिए गुरु को प्रसन्न रखना चाहिए और विनय में रहना चाहिए। गुरु शिष्य से कहे कि, "तुम में अक्ल नहीं है," तो शिष्य चला जाता है, विरोधी बन जाता है कि "आपका दिमाग तो चलता नहीं और मेरे गुरु बन बैठे हो?"

एक बार गुरु बनाने के बाद उनके लिए बिल्कुल भी भाव नहीं बिगड़ना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए, बस। गुरु की गलती नहीं निकालनी चाहिए, वह तो बहुत बड़ी जोखिमदारी है। वर्ना गुरु बनाना ही नहीं। शिष्य किसे कहते हैं? कि उसके गुरु पागलपन करें तो भी श्रद्धा नहीं उठे। उसे शिष्य कहते हैं! आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है, कभी भी गुरु की भूल नहीं निकालनी चाहिए!

दादाश्री : हाँ, यदि बुरे विचार आएँ कि "यह नालायक हैं, बुरे हैं" तो बोलना कि "बहुत उपकारी हैं।" उनसे कुछ तो प्राप्त हुआ था न, आपको? कुछ तो हेल्प हुई होगी न? उन्होंने आपको एकाध सीढ़ी तो चढ़ाई ही होगी, इसलिए आपको उनका उपकार मानना चाहिए। किसीने कुछ भी उपकार किया हो और उसे भूल जाएँ, उसे सच्चा इन्सान नहीं कहेंगे। किसी ने एक कप चाय पिलाई हो न, तो उसे भूले नहीं। मन "बुरा है" बोले फिर भी आप "बहुत उपकारी हैं" ऐसा बोलना ताकि प्लस-माइनस होकर खत्म हो जाएगा।

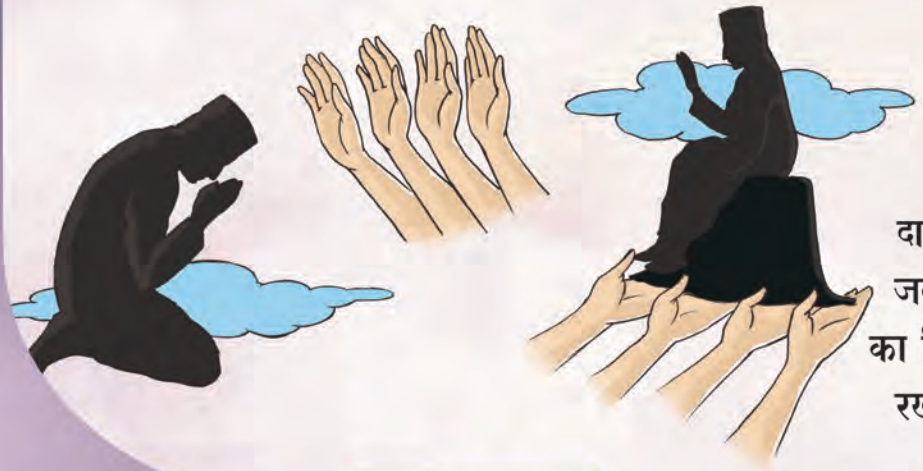

दादाश्री कहते हैं कि जब हमने पूरे जगत् का शिष्य होने की दृष्टि रखी, तब हमें ज्ञानी पद प्राप्त हुआ।

यह तो नई

आप जिन्हें समर्पित होते हैं, उनकी सभी शक्तियाँ आपको प्राप्त हो जाती हैं। समपर्ण किया तो उनका सब हमें प्राप्त होता है। जैसे एक खाली टंकी को पाइप से दूसरी भरी हुई टंकी से जोइन्ट करें, तो खाली टंकी में पानी का लेवल आ जाता है। समर्पण भाव उसके जैसा कहलाता है।

जिनसे कुछ भी सीखने मिला, वे सभी गुरु कहलाते हैं।

कुत्ते से भी सीखने मिलता है इसलिए कुत्ता भी गुरु कहलाएगा। कुत्ता डेढ़ घंटे से भूखा बैठा हो, और उसके लिए बहुत सारा खाना रखें, फिर भी जितना वह खा सके उतना ही खाता है और बाकी सब छोड़कर चला जाता है। वह कुछ परिग्रह बाँधकर नहीं जाता कि "चलो, मैं थोड़ा साथ में ले लूँ, शाम को नहीं मिला तो!"

बात!

यदि पुस्तक से सीखते हो और उस पुस्तक से आपको लाभ हुआ, किसी पुस्तक से हमें मार्गदर्शन मिला, तो वह गुरु कहलाएगी।

ही

पेड़ से भी सीख मिलती है। आम के पेड़ का हम क्या करते हैं? आम खाने के लिए उसे झकझोरते हैं। फिर भी वह फल देता है, मार खाकर भी फल देता है! इतना उसका गुण यदि अपने में आ जाए, तो कितना अच्छा होगा!. उसे हम गुरु बनाएँगे तो उसका गुण हममें आएगा।

अमरदास-रामदास

सिखों के गुरु अमरदास जब वृद्ध हो गए, तब उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का निश्चय किया। लेकिन यह पद किसे सौंपना, यह उलझन उन्हें हो रही थी। इसलिए उन्होंने अपने सभी शिष्यों की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

अपने सभी शिष्यों को इकट्ठा करके उन्होंने सभी को मिट्टी के चबूतरे बनाने को कहा। सभी ने गुरु की आज्ञानुसार चबूतरे बनाए। कार्य पूरा होने पर गुरु ने सभी शिष्यों के चबूतरों का निरीक्षण किया और कहा, "ये चबूतरे मेरी अपेक्षा अनुसार नहीं बने हैं, इन्हें तोड़कर फिर से दूसरे बनाओ।"

शिष्यों ने गुरु के कहे अनुसार किया। उसके बाद गुरु ने कहा, "मुझे लगता है कि यह जगह चबूतरों के लिए योग्य नहीं है। आप लोग उस कोने में बनाओ।"

शिष्यों ने गुरु के कहे अनुसार किया पर गुरु को फिर से जगह पसंद नहीं आई और उन्होंने शिष्यों से दूसरी जगह पर बनाने कहा।

यह सुनकर कुछ शिष्य चिढ़ गए। "गुरु बावले हो गए हैं", ऐसा सोचकर कुछ शिष्य काम छोड़कर चले गए, जो थोड़े बहुत शिष्य बचे थे, उनका काम भी गुरु ने कई बार अस्वीकार किया। अंत में सभी शिष्य तंग आकर गुरु के सौंपे हुए काम को छोड़कर चले गए, सिवाय एक शिष्य के। उस शिष्य का नाम था रामदास।

रामदास निष्ठा से गुरु की आज्ञा का पालन करते रहे। गुरु के प्रति ज़रा भी उल्टा भाव किए बिना वे गुरु के कहे अनुसार चबूतरे बनाते रहे। बाकी शिष्य रामदास का मज़ाक उड़ाने लगे, "अरे मूरख! ये गुरु तो पागल हो गए हैं, उन्हें राज़ी करने के लिए इतनी मेहनत क्यों कर रहा है?"

"भाईयों दुनिया तो अंधी है। केवल सद्गुरु ही सच्ची राह देख सकते हैं और दिखा सकते हैं। दुनिया में किसी के पास विवेक है तो वह केवल सद्गुरु के पास ही है," रामदास ने बहुत नम्रता से अपने सहाध्यायियों से कहा।

रामदास का जवाब सुनकर उनकी टीका करनेवाले कुछ सहाध्यायी बोले, "गुरु के साथ-साथ यह भी पागल हो गया लगता है।"

यह सुनकर कड़े शब्दों में रामदास बोले, "आप लोगों को मेरे लिए जो कुछ उल्टा-सीधा बोलना हो, वह बोलने की छूट है लेकिन सद्गुरु के लिए एक भी अपशब्द मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा। यदि गुरु की आज्ञा होगी तो मैं ज़िंदगीभर खुशी-खुशी चबूतरे बनाऊँगा। गुरु की आज्ञा वही मेरा सर्वस्व है। वही मेरा धर्म है।"

इस तरह, रामदास ने खुशी-खुशी सत्तर बार चबूतरे बनाए! अंत में गुरु ने उनसे कहा, "बस, रामदास मैं तुम्हारी आधीनता और आज्ञा पालन से बहुत राज़ी हुआ हूँ। गुरु की आज्ञा का निष्ठा और श्रद्धा से पालन करना, यही शिष्य का सबसे पहला कर्तव्य है और रामदास ने इस कर्तव्य का खूब दिल से पालन किया है। इसलिए मैं अपने पद पर रामदास को नियुक्त करता हूँ।"

और इस तरह गुरु रामदास ३० अगस्त, १५७४ के दिन चौथे सिख गुरु बने।

दत्तात्रेय

दादाजी कहते हैं कि सभी जगह शिष्य भाव रखना चाहिए। पूरे जगत् के जीवमात्र को गुरु बनाना चाहिए। क्योंकि सभी से सीखने को मिलता है। दत्तात्रेय ने भी ऐसा ही शिष्य भाव रखा था। उन्होंने अपने जीवन में चौबीस गुरु बनाए थे। जानते हो, वे गुरु कौन थे? उनके गुरु की सूचि में आते हैं पृथ्वी, पवन, जल, बालक, मधुमक्खी वगैरह.....तो चलो हम यह जानें कि, दत्तात्रेय ने अपने गुरुओं से क्या सीखा?

दत्तात्रेय जब छोटे थे, तब एक राजा उनके आश्रम में आए। दत्तात्रेय के माता-पिता उस समय आश्रम में उपस्थित नहीं थे, इसलिए दत्तात्रेय ने ही राजा का स्वागत किया। दत्तात्रेय के मुख के तेज को देखकर राजा को लगा कि यह बालक बहुत ही प्रतिभाशाली है और उन्होंने दत्तात्रेय से वार्तालाप शुरू किया।

राजाः पुत्र, तुम अपने माता-पिता के पास अभ्यास करते हो?

दत्तात्रेय : मैं तो सभी से सीख लेता हूँ। केवल माता-पिता से ही नहीं।

राजाः तो तुम्हारे कोई गुरु है?

दत्तात्रेय : हाँ, मेरे चौबीस गुरु हैं, उनमें से कुछ मैं आपको बताता हूँ।

पृथ्वी माता मेरी गुरु हैं, उन्होंने मुझे सिखाया कि जो मुझे रौंदता है या कुचलता है, उन्हें भी मैं प्रेम से रखती हूँ और सभी को आधार देती हूँ।

जल भी मेरे गुरु हैं। जल जिसे भी छूता है, उसे साफ करता है और जो पानी पीता है, उसे जीवन मिलता है। जल कभी रुकता नहीं, वह बहता ही रहता है। इस तरह जीवन में आगे बढ़ते ही रहना चाहिए।

पवन भी मेरे गुरु हैं, पवन फूल और काँटो के बीच भेद रखे बिना दोनों पर एक जैसा ही बहता रहता है। पवन की तरह, मुझे भी किसी के साथ भेदभाव रखे बिना सभी को ताज़गी देनी है।

बालक भी मेरे गुरु हैं। बालक को जब भूख लगती है तब वह रोता है, लेकिन जब पेट भर जाता है तब माता कितना भी कहें तो भी ज्यादा दूध नहीं पीता। ज़रूरत के अनुसार ही माँगना और उससे ज्यादा कभी भी नहीं माँगना, यह मैं बालक से सीखा हूँ।

मधुमक्खी से भी मैं सीखा हूँ, इसलिए वह भी मेरी गुरु हैं, मधुमक्खी कठिन मेहनत करके बहुत सारी जगह से शहद इकट्ठा करती है, पर थोड़ा ही इस्तेमाल करती है और बचा हुआ सभी को बाँट देती है। उसी तरह मैं भी सभी जगह से विद्या ग्रहण करूँगा और मेरी विद्या सबके साथ बाँटने के लिए हमेशा तत्पर रहूँगा।

दत्तात्रेय ने शिष्य भाव रखकर अपनी निरीक्षण शक्ति से कितना अधिक सीखा!

रामकृष्ण परमहंस-स्वामी विवेकानंद

"महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?" उत्कंठा से पूछ रहे नवयुवक के सामने महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने नज़र की।

"महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?" ईश्वर को देखने की तीव्र उत्कंठा से भरे हुए व्याकुल हृदय से फिर वही प्रश्न पूछा।

ऐसे एकाएक पूछे गए प्रश्न से स्तब्ध हुए महर्षि की और से कोई उत्तर न मिलने पर फिर से तीसरी बार युवक ने उसी उत्कंठा से प्रश्न पूछा। तब महर्षि ने उसे कहा, "बेटा, तेरी आँखें तो योगी जैसी हैं।"

"अरे, मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बदले यह तो मेरी प्रशंसा कर रहे हैं! क्या अनेक महात्माओं की तरह इनके पास भी मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं है?" ऐसा सोचकर युवक वहाँ से चला गया। वह युवक थे नरेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विनेकानंद)।

उस समय वे कॉलेज के पहले वर्ष की पढ़ाई कर रहे थे। भक्तिमती माता के दिए हुए बचपन के संस्कारों के परिणाम स्वरूप उनके अंतर में ईश्वर के दर्शन करने की प्रबल इच्छा जागी थी। इसलिए कई साधु महात्माओं से उन्होंने यह प्रश्न पूछा था, पर अभी तक किसी ने उनसे नहीं कहा था कि "हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है।"

उस दौरान एक दिन कॉलेज में अंग्रेजी का क्लास चल रहा था। प्रिन्सिपल विलियम हेस्टी अंग्रेजी की कविता समझा रहे थे। बातों-बातों में उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंस की उच्च आध्यात्मिक स्थिति का उल्लेख किया।

यह सुनकर नरेन्द्र के मन में इच्छा जाग उठी कि ऐसे महात्मा के दर्शन करने हैं और अपने प्रश्न का उत्तर उन से प्राप्त करना है। रामकृष्ण परमहंस के साथ की पहली मुलाकात में नरेन्द्र ने एक सुंदर भजन गाया। नरेन्द्र का सुंदर भजन सुनकर रामकृष्ण परमहंस भाव विभोर हो गए। वे अपने भावी शिष्य को पहचान गए और खूब भावपूर्वक नरेन्द्र से पूछा, "नरेन, आज तक तुम कहाँ थे? मैं कब से तुम्हारी राह देख रहा हूँ।"

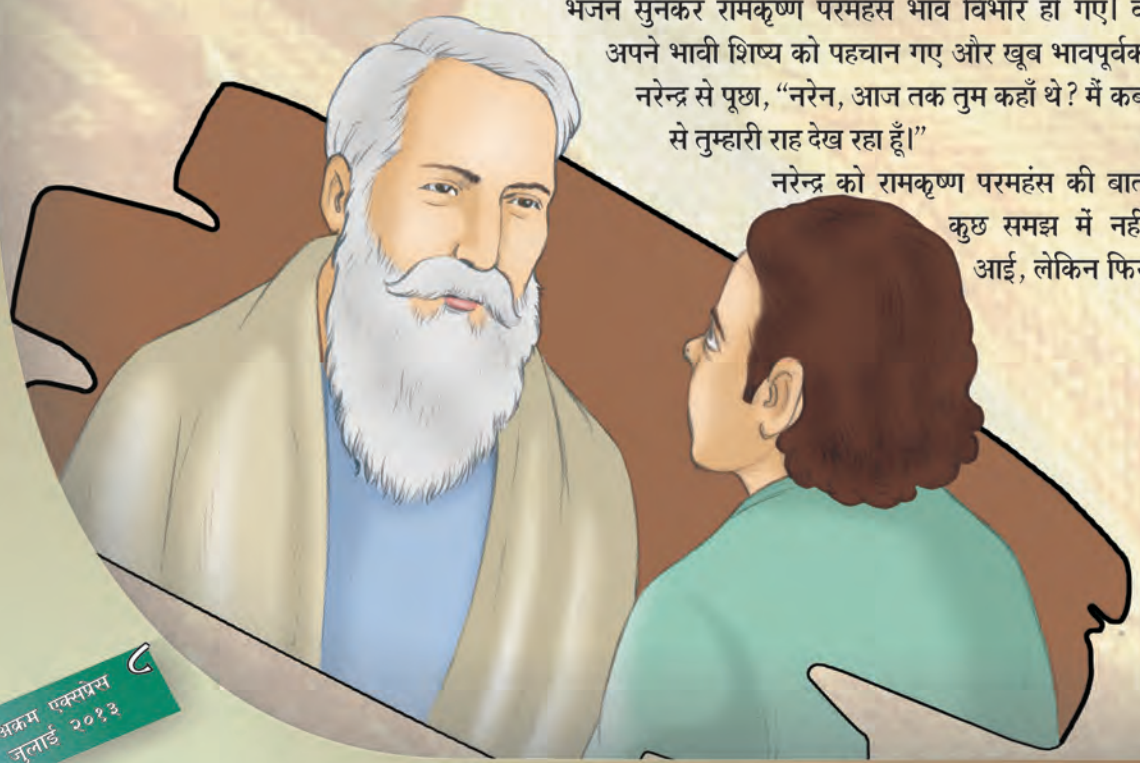

नरेन्द्र को रामकृष्ण परमहंस की बात कुछ समझ में नहीं आई, लेकिन फिर

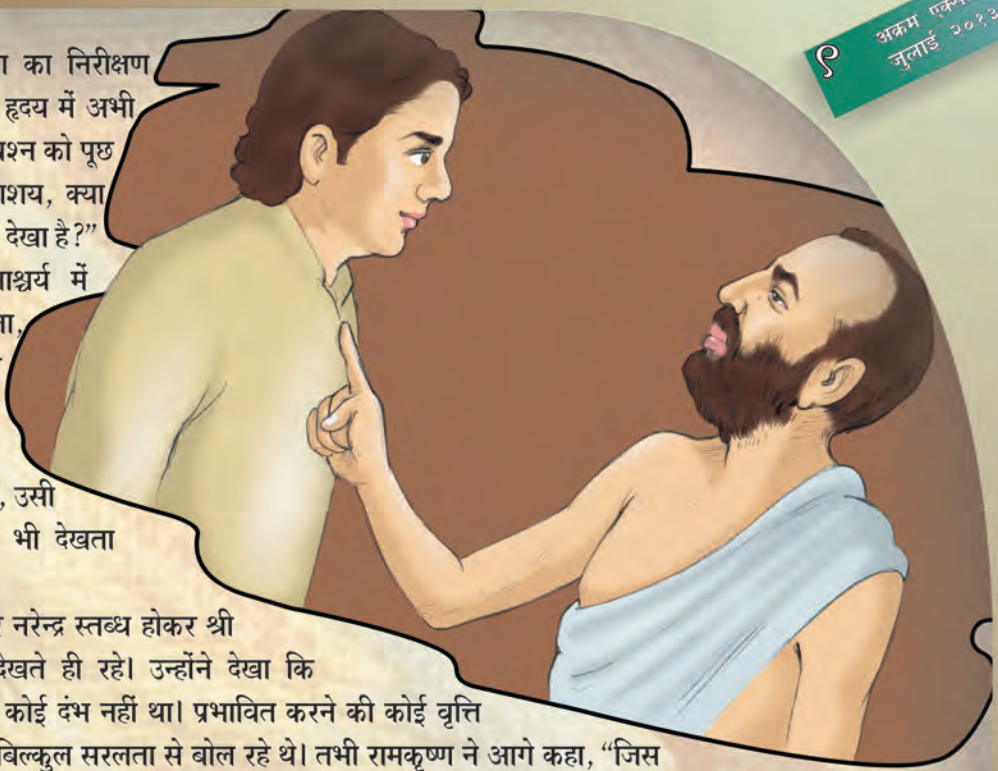

भी वे रामकृष्ण का निरीक्षण करते रहे। फिर हृदय में अभी तक सुलग रहे प्रश्न को पूछ ही लिया। "महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?" और उनके आश्चर्य में उन्हें जवाब मिला, "हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है और जिस तरह मैं तुम्हें देख रहा हूँ, उसी तरह ईश्वर को भी देखता हूँ।"

यह सुनकर नरेन्द्र स्तब्ध होकर श्री रामकृष्ण को देखते ही रहे। उन्होंने देखा कि उनकी वाणी में कोई दंभ नहीं था। प्रभावित करने की कोई वृत्ति नहीं थी। वे तो बिल्कुल सरलता से बोल रहे थे। तभी रामकृष्ण ने आगे कहा, "जिस तरह मैं तुम्हें देख रहा हूँ और तुम से बातें कर रहा हूँ, उसी तरह ईश्वर से भी बात कर सकता हूँ।" यह तो एकदम नई ही बात नरेन्द्र ने सुनी! यहाँ तो सिर्फ भगवान को देखने या उनके दर्शन करने की ही बात नहीं है पर उनके साथ बातचीत भी कर सकते हैं!

आश्चर्य चकित होकर नरेन्द्र सब सुनते रहे। "हाँ, ईश्वर से बात ज़रूर कर सकते हैं लेकिन ऐसी इच्छा कौन करता है? लोग स्त्री, पुत्र, धन, संपत्ति के लिए आँसू की नदियाँ बहाते हैं पर ईश्वर के लिए कौन ऐसा करता है? यदि कोई इन्सान सच्चे दिल से आँसू बहाए तो उसे ईश्वर के दर्शन अवश्य होंगे।" इस वाक्य से नरेन्द्र के मन पर बहुत गहरा असर पड़ा। जैसे इसी बात को सुनने के लिए उनका हृदय वर्षों से तड़प रहा था। उनको लगा कि, आखिर जीवन में पहली बार मुझे एक ऐसे महापुरुष मिले कि जो हिम्मत से कह सकते हैं कि "हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है।" फिर तो श्री रामकृष्ण की पवित्रता, सच्चाई, त्याग और ईश्वर के साथ की तन्मयता से प्रभावित होकर नरेन्द्रनाथ और भी अधिक श्री रामकृष्ण के संपर्क में आने लगे और उन्होंने ऐसे परम पुरुष के चरणों में संपूर्ण समर्पण करके, उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया।

एक बार स्वामी रामकृष्ण के दो शिष्य के बीच विवाद हुआ। उनका सवाल था कि "दोनों में से बड़ा कौन?" आखिर में समाधान करने, वे गुरु के पास पहुँचे और कहा, "हमारे बीच मतभेद हुआ है कि हम दोनों में से बड़ा कौन?" परमहंस हँसकर बोले, "यह तो बिल्कुल सीधी बात है। आप लोगो में से जो दूसरे को अपने से बड़ा समझेगा, वही बड़ा है।" गुरुदेव का जवाब से दोनों की चर्चा का स्वरूप ही बदल गया। अभी तक "मैं बड़ा... मैं बड़ा..." कर रहे शिष्य "अब तू बड़ा... तू बड़ा..." कहने लगे।

किसी की भी तकरार सहज में सुलझा दे और उनकी दृष्टि बदल दे, उनमें ऐसी जबरदस्त सूझ थी।

अंधकार से प्रकाश की ओर

"जिस दिन मुझे मेरी शिक्षिका मिस सलिवन मिलीं, वह दिन मेरी ज़िंदगी का सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण दिन है।" ये शब्द विश्वविख्यात हेलन केलर के हैं।

हेलन केलर का जीवन एक प्रेरणा है। लेकिन उनके अंधकार मय जीवन को प्रेरणादायक बनाने में सबसे बड़ा सहयोग उनकी शिक्षिका मिस एनी सलिवन का है। आज एनी सलिवन का स्थान जगत् के उत्तम शिक्षकों में से है। तो चलो मित्रो, हम हेलन केलर और उनकी शिक्षिका एनी सलिवन के बारे में जानें।

हेलन जब १९ महीने की थीं, तभी एक गंभीर बीमारी के कारण उन्हें दिखना और सुनाई देना बंद हो गया था। इतनी छोटी उम्र में वे एक अंधकार की कैदी हो गईं थीं, लेकिन जब उनकी शिक्षिका एनी सलिवन का उनके जीवन में प्रवेश हुआ, तब उन्हें इस कैद से मुक्ति मिली।

मार्च ३, १८८७ के दिन मिस सलिवन ने पहली बार छः वर्ष की हेलन को देखा। मिस सलिवन जब हेलन से मिलीं, तब हेलन एक हठीली, ज़िद्दी और अशिष्ट बच्ची थी। देखने व सुनने में असमर्थ होने के कारण, वह बोल भी नहीं सकती थी। इसलिए दुनिया के साथ संपर्क का उनके पास कोई माध्यम ही नहीं था। भाषा जैसा कुछ होता है इतना भी उन्हें पता नहीं था और इस कारण उन्हें बहुत व्यग्रता, व्याकुलता और हताशा महसूस होती थी।

हेलन को देखकर मिस सलिवन को पता चल गया था कि हेलन को सँभालना कितना कठिन है लेकिन उन्होंने मन में तय किया कि, वे पीछे नहीं हटेंगी और गुरु के रूप में यह काम सफलतापूर्वक पूरा करके ही रहेंगी। मिस सलिवन, हेलन की अदृश्य सुषुप्त शक्तियों को भी पहचान गई थी।

एक दिन सुबह मिस सलिवन हेलन को अपने कमरे में ले गईं और उसे एक गुड़िया दी, थोड़ी देर हेलन गुड़िया के साथ खेली। फिर मिस सलिवन ने धीरे से हेलन के हाथ पर "गु..ड़ि..या" शब्द लिखा। इस तरह उँगलियों से खेलने में हेलन को मज़ा आया और वह उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करने लगी पर उसे पता नहीं था कि वह शब्द लिख रही है, या फिर शब्दों जैसी कोई चीज़ होती है। वह तो बंदर की तरह, बिना समझे, सिर्फ नकल कर रही थी।

फिर एक दिन, जब हेलन अपनी नई गुड़िया के साथ खेल रही थी, तब मिस सिलवने कपड़ों की बनी बड़ी गुड़िया उसकी गोद में रखी और "गु...ड़ि...या" लिखा। और "गुड़िया" शब्द इस चीज़ को कहते हैं, ऐसा समझाने की कोशिश की लेकिन हेलन को समझ नहीं आ रहा था और वह चिढ़ गई फिर भी मिस सलिवन धीरज से खुद के चातुर्य से हेलन को समझाने की कोशिश करती ही रहीं।

वे हेलन को बाहर ले गईं और पानी की धार के नीचे उसका एक हाथ रखा। और साथ ही साथ दूसरे हाथ पर उन्होंने "पानी" शब्द लिखा। शुरू में धीरे-धीरे लिखा। फिर वह तेज़ी से लिखने लगीं। पूरा ध्यान उनकी उँगलियों पर एकाग्र करके हेलन खड़ी थीं।

अचानक ही उन्होंने भाषा का गूढ रहस्य समझ में आया। उस समय उन्हें मालूम हुआ कि "पा..नी" का अर्थ उनके हाथ पर से बहनेवाला ठंडा पदार्थ है। उस दिन हेलन को अत्यंत मुक्तता का अनुभव हुआ। तब उन्हें यह समझ में आया

कि हर एक चीज़ का नाम होता है। और सभी चीज़ों का नाम जानने की आतुरता उनके मन में जागी। उस दिन वह कई नए शब्द सीख गई। छः साल में पहली बार उसे हुआ कि कब नया दिन उगे!

हेलन की नया सीखने की आतुरता और मिस सलिवन की क्षमता के कारण कुछ ही महीनों में हेलन लगभग ६०० शब्द, गणित के पहाड़े और ब्रेल लिपि (नेत्रहीन लोगों की लिखने की लिपि) सीख गईं और फिर मिस सलिवन की मदद से हेलन ने कॉलेज की डिग्री भी प्राप्त की। हेलन पहली ऐसी महिला है कि जो देख और सुन नहीं सकती थी इसके बावजूद यह डिग्री प्राप्त की। दुनियाभर में हेलन बहुत ही प्रख्यात हो गई। थोमस एडिसन, अलेक्ज़ेन्डर, ग्राहम बेल और मार्क ट्वेन जैसे प्रसिद्ध और नामांकित साइन्टिस्ट और लेखकों से भी हेलन की मुलाकात हुई।

यह सब शिक्षिका मिस सलिवन की मदद के बिना संभव ही नहीं था। हेलन ने अपनी आत्मकथा में अपने गुरु के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा है।

"शुरू में मैं अनेक सुषुप्त शक्तियों का समूह मात्र थी। मेरी गुरुजी ने इन सभी को जागृत किया और विकसित किया है। उनसे मिलने के कारण मेरे आसपास की सभी चीज़ें अर्थपूर्ण बन गईं। जब से वे मिलीं तब से उन्होंने हर एक चीज़ में छुपी सुंदरता के बारे में मुझे बताने का एक भी मौका जाने नहीं दिया और मेरे जीवन को मधुर और उपयोगी बनाने में वे हमेशा तन-मन से प्रयत्नशील रहीं।

मेरी तालीम के आरंभ के वर्ष इतने सुंदर बीतने का कारण मेरे गुरजी की प्रतिभा, उनकी निरंतर सहानुभूति और चातुर्य था। इतने अधिक उल्लास और आनंद से मैं ज्ञान ग्रहण कर सकी उसका कारण यह था कि, किस समय क्या सीखना योग्य है, यही सोचकर वे चलती थी। मेरी गुरुजी और मैं इतने निकट हैं कि उनसे अलग मैं अपने बारे में सोच ही नहीं सकती। मुझ में जो कुछ भी अच्छाईयाँ हैं, वे उन्हींकी सिखाई हुई हैं।"

देखा, मित्रो गुरु और शिष्य का कैसा अद्‌भुत उदाहरण! दृढ़ निश्चय और निष्ठा रखें तो क्या कुछ भी असंभव है?

सहजानंद स्वामी

दादाजी कहते हैं कि, सहजानंद स्वामी सच्चे गुरु हो चुके हैं। सहजानंद स्वामी ने अपने गुरु रामानंद स्वामी से माँगा कि "मेरा एक भी शिष्य अन्न-वस्त्र के बिना नहीं रहना चाहिए। भक्तों का दुःख मुझ पर आए लेकिन कोई भी भक्त दुःखी न हो।"

चलो, हम भी ऐसे महान गुरु, सहजानंद स्वामी के बारे में थोड़ा जानें। अपने भक्तों के श्रेय का सहजानंद स्वामी ने हमेशा ध्यान रखा। वे खुद तकलीफ उठाकर, भक्तों को व्यवहार में मदद करते और उनके सच्चे रिश्तेदार बनकर रहे।

सहजानंद स्वामी अपने भक्तों में "महाराज" की तरह पहचाने जाते थे। मयाराम भट्ट, महाराज के पुराने शिष्य थे। महाराज जब एक गाँव से दूसरे गाँव विहार कर रहे थे तब मयाराम भट्ट ने महाराज के समक्ष उनके साथ आने की इच्छा व्यक्त की लेकिन साथ ही हाथ जोड़कर समस्या बताते हुए कहा "लेकिन महाराज! मेरी साठ बीघा ज़मीन में भरपूर बाजरा हुआ है, वह काटना बाकी है।" यह सुनकर महाराज पूरे संघ को लेकर उनके गाँव पधारे। वहाँ हँसिए मँगवाकर सभी संतों और भक्तों को दिए और खुद ने भी हँसिया हाथ में लिया। भट्टजी का साठ बीघा जमीन पर उगा हुआ बाजरा कट गया और उनकी समस्या दूर हो गई।

अकाल पड़नेवाला था तब महाराज ने भक्तों को पहले से ही सावधान कर दिया था। भक्तों को संदेशा देने वे खुद घोड़े पर सवार होकर अकेले ही निकल पड़े। कहीं पर ज्यादा नहीं रूके और गाँव-गाँव तथा घर-घर घूमकर भक्तों को सावधान करते हुए कहते, "महाभयंकर अकाल पड़नेवाला है, इसिलए अभी से अनाज का संग्रह करने लगो। घर में पैसे न हों तो घर का सामान बेच देना, पशु, बैल, घोड़े जो कुछ भी हो वह बेचकर जो पैसे मिलें, उससे अनाज ले लेना।"

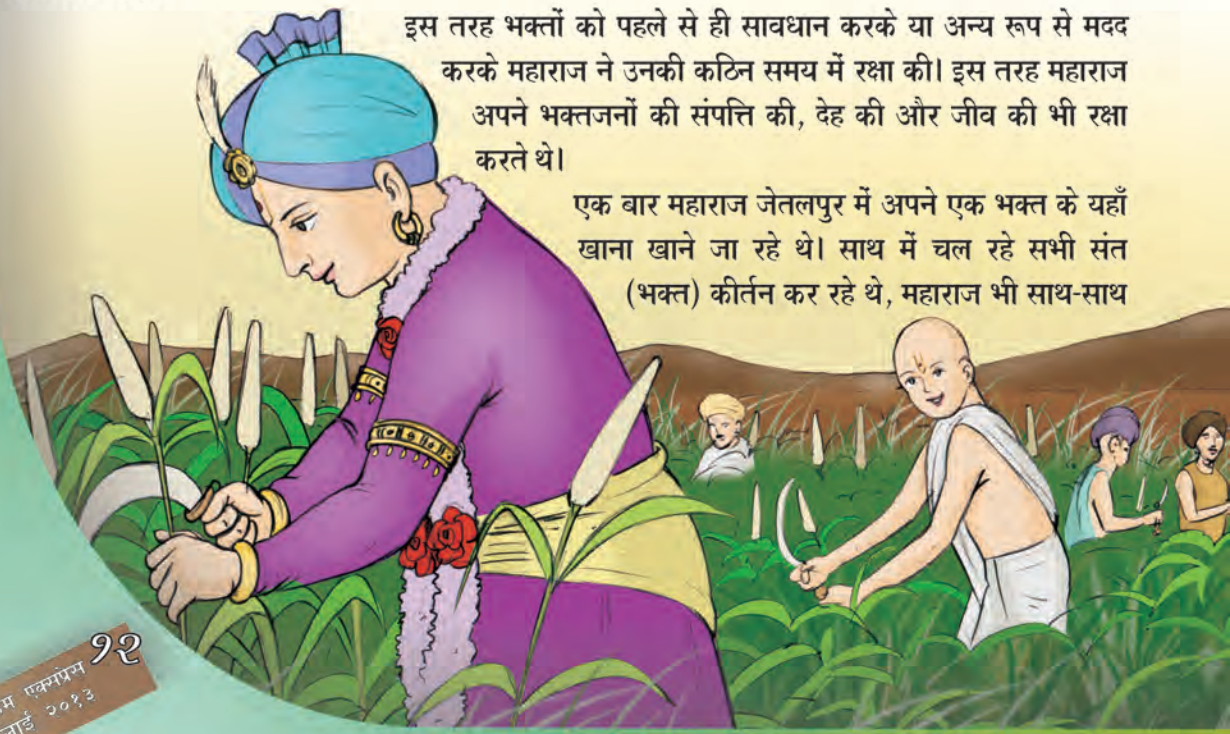

इस तरह भक्तों को पहले से ही सावधान करके या अन्य रूप से मदद करके महाराज ने उनकी कठिन समय में रक्षा की। इस तरह महाराज अपने भक्तजनों की संपत्ति की, देह की और जीव की भी रक्षा करते थे।

एक बार महाराज जेतलपुर में अपने एक भक्त के यहाँ खाना खाने जा रहे थे। साथ में चल रहे सभी संत (भक्त) कीर्तन कर रहे थे, महाराज भी साथ-साथ

ताली बजाकर गा रहे थे। भाद्रपदमास की धूप थी, इसिलिए उनके एक भक्त भगुजी ने महाराज के सिर पर छत्र रखा था। महाराज ने एक-दो बार छत्र को हाथ से दूर किया, फिर भी भगुजी ने उसे पकड़े रखा। महाराज कुछ आगे चले और एकदम खड़े रहे। फिर महाराज ने भगुजी को डाँटते हुए कहा, "सभी संत धूप में चल रहे हैं तो हम पर क्यों छत्र रख रहे हो?"

ऐसे भक्त वत्सल सहजानंद स्वामी अपने स्वामित्व को छोड़कर हमेशा दूध में शक्कर की तरह अपने भक्तों में घुल-मिल जाते।

अंत समय में भी वे अपने भक्तों को नहीं भूले और उनकी सभी मनोकामनाएँ पूरी की।

सं. १८८६ में महाराज बहुत ही बीमार हो गए थे, रोजमर्रा की सभी क्रियाएँ बिस्तर पर ही करते और कुछ खाते-पीते और बोलते-चलते भी नहीं थे। उस समय रोजका गाँव में रहनेवाले उनके एक भक्त काकाभाई भी बीमार थे। उन्होंने महाराज को चिट्ठी लिखकर बताया कि "हे जीवनप्राण! आपसे हो सके तो मुझे अंतिम दर्शन देने पधारना।" अपने भक्त की इस विनती को स्वीकार करके महाराज अपनी बीमारी की परवाह किए बिना रोजका पधारे और दो दिन वहाँ ठहरकर काकाभाई का भाव पूरा किया।

ऐसे समर्थ गुरु का शिष्य वृंद भी उतना ही समर्पित था। अपने गुरु का राजीपा प्राप्त करने के लिए, ठंडी-गर्मी, भूख-प्यास या मान-अपमान के बारे में सोचे बिना उनके शिष्य उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते और अपने शिष्यों की गुरुभक्ति और प्रेम देखकर महाराज ने उनसे कहा था: "संतों! आपका मेरे प्रति प्रेम देखकर मेरा अंतर द्रवित हो जाता है। आप लोग देश-देश में घूमे हैं। अपमान, तिरस्कार, मार सहन करते हुए भी हमारा स्वरूप पहचानने में पीछे नहीं हटे, आप लोगों को हमने तरह-तरह से जाँचा है। कठिन व्रत दिए, ठंडी-गर्मी-बरसात सहन किए फिर भी हमारे प्रति आपका प्रेम नहीं टूटा, आपकी यह दृढ़ता देखकर हमारा मस्तक आप लोगों के आगे झुक जाता है। आपके चरणों की धूल लेने को तत्पर हो जाता है!"

इस तरह इतिहास में ऐसे समर्थ गुरु और उन्हें समर्पित हुए शिष्यों का संबंध स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया है!

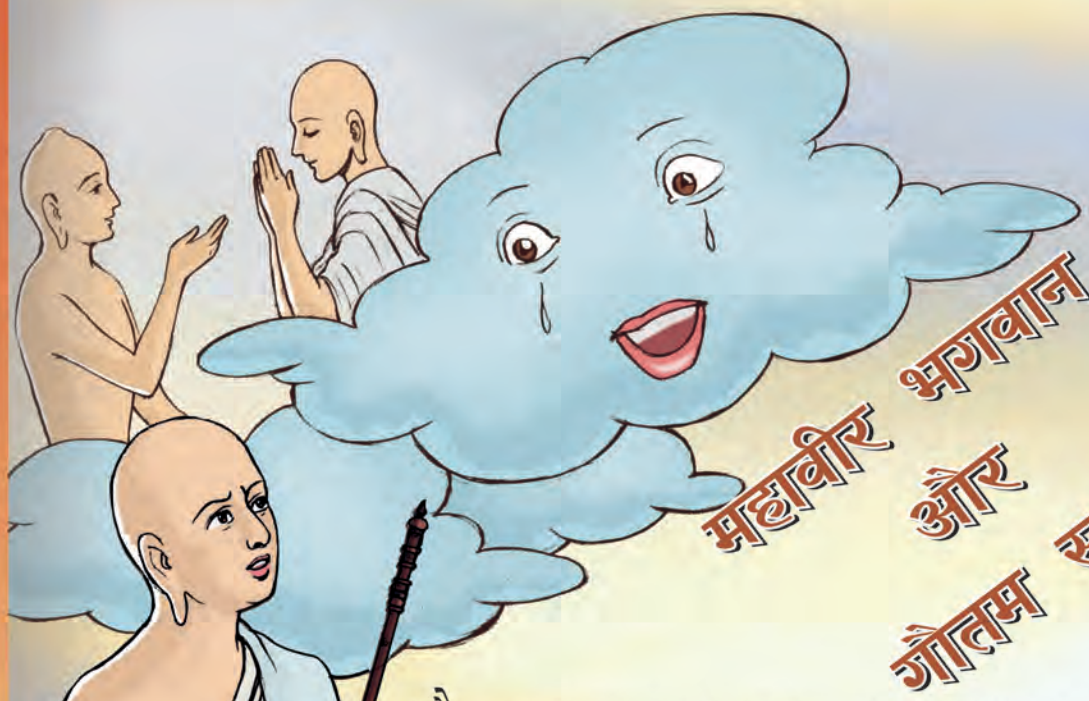

महावीर भगवान और गौतम स्वामी

गौतम स्वामी, महावीर प्रभु के प्रथम शिष्य थे। उन्हें प्रभु के प्रति बहुत राग था। प्रभु का विरह उनसे सहन नहीं होता था। अपने निर्वाण के समय को नज़दीक आया जानकर प्रभु महावीर ने गौतम स्वामी के लिए एक युक्ति की।

उन्होंने गौतम स्वामी को आज्ञा दी कि, पास के गाँव में जाकर एक श्रावक को धर्म उपदेश देकर आओ। भगवान की आज्ञा गौतम स्वामी के लिए ब्रह्म वाक्य जैसा था, आज्ञा मिलते ही वे प्रसन्न चित्त से श्रावक के घर जाने के लिए निकल पड़े।

वे बस आधे रास्ते ही पहुँचे होंगे कि तभी भगवान महावीर के निर्वाण की आकाशवाणी हुई। यह सुनकर गौतम स्वामी को बहुत आघात लगा कि, सबकुछ जानते हुए भी प्रभु ने मुझे अंत समय उनसे दूर किया! भगवान ने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? क्यों? क्यों?....

गौतम स्वामी सोच में पड़ गए। विचारश्रृंखला आगे बढ़ते ही भगवान पर से दृष्टि हटी और खुद पर पड़ी और उनकी विचारश्रृंखला ने रास्ता बदला.... "अरेरे! मेरी भूल हो गई! मैंने भगवान के लिए कैसा गलत सोचा! मुझे भगवान के लिए राग है लेकिन भगवान तो वीतराग हैं। भगवान को किसी के साथ राग-द्वेष नहीं होता। भगवान तो अत्यंत करुणावाले हैं, वीतराग हैं....."

और भगवान की वीतरागता उनकी दृष्टि में आने लगी। आवरण खिसकने लगे। जैसे ही संपूर्ण वीतरागता दृष्टि में आई कि वहीं पर उन्हें भी केवल ज्ञान प्रकट हो गया। जहाँ तक गुरु पहुँचे होते हैं, वहाँ तक शिष्य को पहुँचा ही देते हैं!

श्रीमद् राजचंद्र-अंबालालभाई

एक बार श्रीमद्जी ने अंबालालभाई को आज्ञा दी कि, "अंबालाल, बाहर का आँगन साफ कर दो।" अंबालालभाई श्रीमद्जी का आशय समझ न सके और उन्होंने नौकर को बुलाकर कहा कि, "तू बाहर का आँगन वगैरह सब साफ कर देना।"

यह सुनकर श्रीमद्जी ने अत्यंत करुणा से कहा, "अंबालाल, हमें नौकर रखना आता है।" यह शब्द सुनकर अंबालालभाई चेत गए और आज्ञाधीन रहकर आँगन उन्होंने खुद ही साफ किया। उस समय उन्हें खुद की गलती समझ में आई कि मात्र हित के लिए ही दी गई सेवा या आज्ञा खुद न करके किसी और को सौंपना कितनी बड़ी मूर्खता है! उनके द्वारा दी गई प्रत्येक सेवा में, आज्ञा में मेरा कल्याण ही है, फिर वह आँगन साफ करने की ही क्यों न हो, ऐसा उनका निश्चय मज़बूत हुआ।

उस दिन से उन्होंने अनुभव किया कि श्रीमद्जी ने आँगन साफ करवाकर वास्तव में उनका चित्त साफ करवाया है।

दूसरी एक और घटना है। एक बार श्रीमद्जी बोध दे रहे थे। उसमें उन्होंने अंबालालभाई से कुछ शब्द कहे। वही शब्द दो-तीन घंटों बाद जब उनसे फिर पूछे गए, तब उन्होंने कहा, "मुझे याद नहीं है।"

श्रीमद्जी ने उनसे कहा, "उठो, यहाँ से चले जाओ। शब्द याद आएँ तभी हमारे पास आना।"

अंबालालभाई रोते-रोते, दुःखी हृदय से बाहर चले गए और शब्द याद करने लगे। तभी एक मुमुक्षु ने श्रीमद्जी से कहा, "शब्द तो याद आ जाएँगे, उन्हें अंदर आने दो।" लेकिन श्रीमद्जी ने उस पर ध्यान नहीं दिया, फिर शाम को जब शब्द याद आए तब उन्होंने अंबालालभाई को ऊपर आने दिया।

उस दिन से जिन्हें दो-तीन घंटों बाद का भी शब्द याद नहीं रहते थे। ऐसे अंबालालभाई को आठ दिनों बाद भी श्रीमद्जी का बोध अक्षरशः लिख सकें, उस तरह से याद रहने लगा।

कैसा होता है गुरु का प्रताप! कमज़ोरी को शक्ति में परिवर्तित कर देनेवाले गुरु का अद्भुत सामर्थ्य बेजोड़ है!

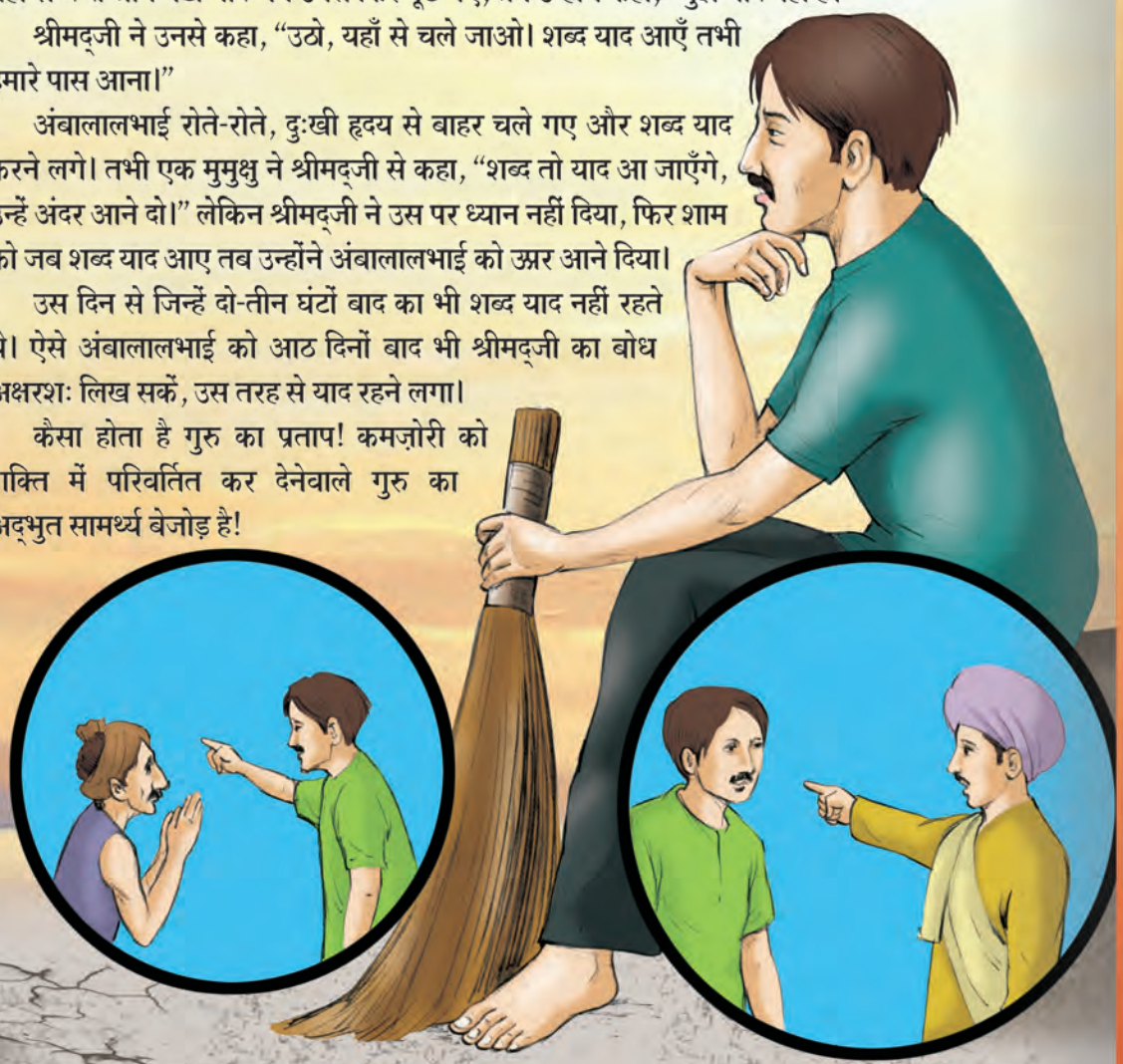

मीठी यादें

बीस साल तक नीरू माँ को गढ़ कर दादाश्री ने वात्सल्यमूर्ति नीरू माँ की प्रतिमा का सर्जन किया। जैसे एक मूर्तिकार जब मूर्ति गढ़ता है, तो सबसे पहले पत्थर में ढाँचा बनाता है, फिर धीरे-धीरे मूर्ति को आकार देता है, फिर फिनिशिंग करके मूर्ति बनाता है, आँखें, होठ, नाक आदि तैयार करता है। फिर पॉलिश-पेन्टिंग करके मूर्ति बनाता है और अंत में जब प्राणप्रतिष्ठा होती है, तब वह मूर्ति दर्शन के लिए भगवान समान बन जाती है।

इसी तरह, दादाश्री को नीरू माँ की मूर्ति गढ़ने का स्कोप मिला था। गढ़ने के दौरान आनेवाली कैसी भी टँकाई पूज्य नीरू माँ झेल लेती थीं। दादाश्री के प्रति उनकी अर्पणता, आधीनता और विनय में कभी-भी कमी नहीं आई!

नीरू माँ का मान निकालने के लिए दादाश्री कई बार सबके बीच उन्हें अपमानित कर देते थे और कहते, "आपको क्या समझ में आता है? आपको किसने सिखाया? आपको किसने डॉक्टर बनाया?" जब सबके सामने दादा ऐसा कहते, तब नीरू माँ को अंदर ऐसा ही रहता था कि "दादा मेरा हित कर रहे हैं।"

दादाश्री कितना भी अपमान करें (नीरू माँ के मान को खत्म करने के लिए) फिर भी नीरू माँ ने दादा का एक भी दोष नहीं देखा। बीस-बीस साल तक साथ में रहे लेकिन एक सेकन्ड के लिए भी उन्हें दादा के प्रति एक भी उल्टा विचार नहीं आया। यदि दादाश्री किसी और के साथ भी सख्त व्यवहार कर रहे होते, तब भी नीरू माँ को अंदर ऐसा ही रहता कि दादा उसके हित के लिए ही ऐसा कर रहे हैं।

नीरू माँ की किसी भी गलती को खत्म करने के लिए दादा का एक इशारा ही काफी था। नीरू माँ जड़ से वह गलती निकालकर ही छोड़तीं। दादाश्री कहते थे कि नीरू बेन को कोई भी गलती दूसरी बार बतानी ही नहीं पड़ी। भूल का पुनरावर्तन उन्होंने कभी होने ही नहीं दिया। उनका पुरुषार्थ इतना ज़बरदस्त था।

१९८७ में लॉस एन्जलिस, अमरीका में जेकी नाम की बहन के साथ सत्संग हुआ था। जेकी ने पूछा कि "दादाजी, नीरू बेन के साथ आपका क्या संबंध हैं?" तब दादाश्री ने कहा "नीरू बेन एम.डी. डॉक्टर हैं और निरंतर हमारी सेवा में हैं। दो आत्मा और एक देह,

ऐसी अभेदता (एकता) से वे हमारे साथ रहती हैं।"

दादाश्री के प्रति नीरू माँ की भक्ति ऐसी अनन्य थी कि उनके लिए दादा ही सर्वस्व थे। उन्होंने अपने शरीर की कभी परवाह तक नहीं की। यों दादाश्री के प्रति समर्पण भाव और सिन्सियारिटी से नीरू माँ ने दादाश्री का खूब राजीपा(गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता) प्राप्त किया और उनकी असीम कृपापात्र बनीं और अंत में आत्मा के स्पष्टवेदन तक पहुँचीं।

१९७५-७६ की बात है। एक दिन दादाश्री ने पूज्य दीपकभाई से पूछा, "हनुमानजी की छाती फटे उसमें राम और सीताजी दिखाई देते हैं, तेरे अंदर क्या दिखेगा?"

दीपकभाई ने कहा, "नीरूबेन या मल्लिनाथ" (दादाश्री कई बार नीरू माँ को मल्लिनाथ कहकर बुलाते थे)। यह सुनकर दादाजी एकदम खुश होकर बोले, "ऐसा! तो ऐसा ही रहने देना।" उसके बाद दादाश्री ने दीपकभाई को आज्ञा दी थी कि, "तुझे कभी भी नीरूबेन का एक भी दोष नहीं देखना है।" दादाश्री ने दीपकभाई को समझाते हुए कहा, "तू नीरू माँ का एक भी दोष देखेगा, तो उनके द्वारा ज्ञान की जितनी सीढ़ियाँ चढ़ा होगा, वहीं से धड़ करके नीचे आ गिरेगा।" और दादाश्री की आज्ञा की वजह से दीपकभाई ने कभी भी नीरू माँ का दोष एक भी नहीं देखा।

दादाश्री ने सिद्धांत समझाते हुए कहा कि, जिस सीढ़ी से हम चढ़ रहे हों, यदि उसी सीढ़ी को तोड़ेंगे (बुराई करेंगे), तो कैसे ऊपर चढ़ पाएँगे?

मित्रों, अपने शिक्षक अपनी सीढ़ी कहलाते हैं। उस सीढ़ी को हम तोड़ें, यानी कि उनके दोष देखें, तो क्या हम ऊपर चढ़ सकेंगे? प्रगति कर सकेंगे?

गुरुपूर्णिमा

कबीर साहब कहते हैं:

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूं पाय,
बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय

गुरु और गोविंद दोनों खड़े हों, तब यदि मन में हो कि किसको पहले प्रणाम करूँ? तो निश्चित तौर पर गुरु की ही कृपा है कि जिन्होंने गोविंद (प्रभु) के दर्शन करवाए।

प्राचीनकाल से भारतीय परंपरा में गुरु को सर्वोच्च पद दिया गया है और भारतीय परंपरा में गुरुपूजन का एक विशेष स्थान है। गुरुपूर्णिमा के दिन गुरुपूजन किया जाता है।

गुरुपूर्णिमा का दिन गुरु और शिष्य के लिए विशेष महत्व रखता है। पौराणिक इतिहास के अनुसार सबसे पहले मुनि वेदव्यास का पूजन नैमिषारण्य में शौणक ऋषि ने किया था। इसलिए इतिहास में अषाढ़ी पूर्णिमा अर्थात् "व्यासपूर्णिमा" के दिन भारत में गुरुपूजन मनाने की बहुत महिमा है।

वर्षों से साधना और उपासना करने पर भी शौणक ऋषि को आत्मा की अनुभूति नहीं हो पा रही थी। तभी मुनि वेदव्यास ने उन्हें दिव्य दृष्टि देकर आत्मज्ञान प्राप्त करवाया। शौणक ऋषि ने वेदव्यास को गुरु पद पर नियुक्त करके उनका भावपूर्वक पूजन किया और इस तरह ऋषिकालीन युग से भारत में गुरुपूर्णिमा के पवित्र दिन गुरुपूजन की महिमा है।

हम भी दादाश्री की भक्ति करके गुरुपूर्णिमा उत्सव मनाते हैं। दादाश्री हमेशा कहते थे कि गुरुपूर्णिमा, जन्मजयंती और नये साल, इन तीन दिनों पर हम अंदरवाले भगवान (दादा भगवान) के साथ अभेद रहते हैं। संपूर्ण वीतराग होते हैं। इसलिए उस दिन तुम्हें हमारे पूर्ण स्वरूप के दर्शन होंगे। अपने में जिन शक्तियों की कमी लगे, इन दिनों में माँगने से वे अवश्य मिलेंगी।

महापुरुषों के विचार... गुरु के लिए...

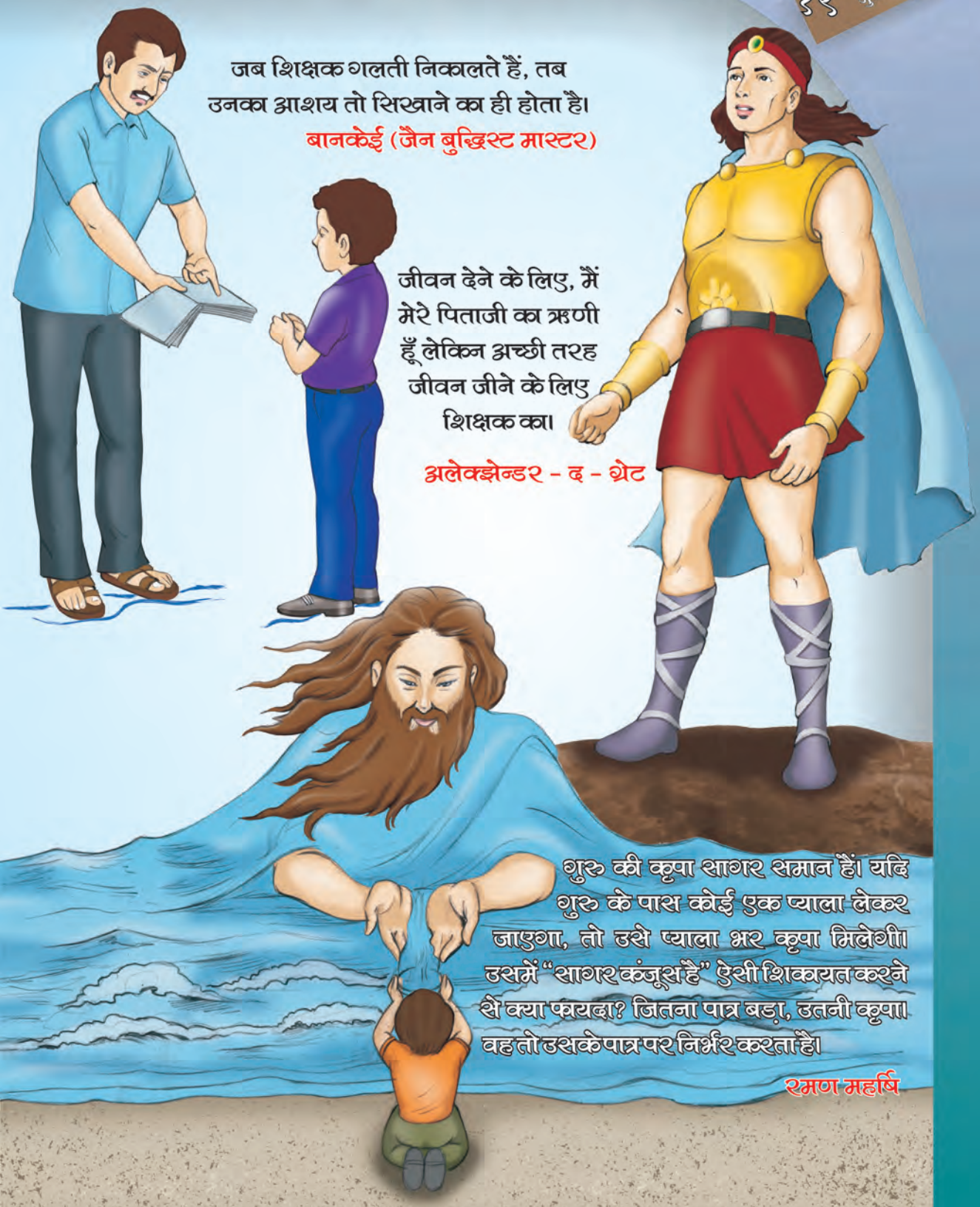

Akram Express
July 2013
Year : 1, Issue : 4
Conti. Issue No.:4

BALVIGNAN
Fun 'n' Gnan with Dada

Date of Publication On 8th Of Every Month
Posted at Adalaj Post office
on 8th of every month

समर वेकेशन दौरान किए गए किड्स केम्प की झलक

अक्रम एक्सप्रेस जुलाई २०१३ २०

अक्रम एक्सप्रेस के पाठकों के लिए.....

बालमित्रो,

हर महीने हम मिलते तो हैं ही लेकिन मैं तुम्हें पूछना तो भूल ही जाता हूँ। तो चलो, आज पूछ ही लेता हूँ। मित्रो, आपको अक्रम एक्सप्रेस पढ़ना अच्छा लगता है? अक्रम एक्सप्रेस पढ़ने के बाद तुम्हारे जीवन में कैसा परिवर्तन अनुभव कर रहे हो? वह हमें ज़रूर बताना ताकि हमें सबसे अच्छा अक्रम एक्सप्रेस बनाने में प्रोत्साहन मिले। आपके अनुभव हमें नीचे दिए गए एड्रेस या इमेल आइडी पर ज़रूर से भेजना।

बालविज्ञान विभाग, त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
मु.पो.- अडालज, जि. - गांधीनगर - ३८२४२१,e-mail: akramexpress@dadabhagwan.org

अक्रम एक्सप्रेस के वार्षिक सदस्यों के लिए सूचना

आपकी वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है उसका पता कैसे चलेगा? यदि आपकी इस महीने में आई हुई अक्रम एक्सप्रेस के कवर के लेबल पर लगे हुए मेम्बरशीप नं. के बाद # हो तो यह आपकी अंतिम अक्रम एक्सप्रेस है। उदा. **AGIA4313#** और यदि लेबल पर मेम्बरशीप नं. के बाद ## हो तो अगले महीने में आपकी सदस्यता समाप्त होगी। उदा. **AGIA4313##**

अक्रम एक्सप्रेस रिन्यूअल की जानकारी संपादकीय पेज पर दी गई है।

Printer, Publisher and Owner - Mr. Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation, Editor - Mr. Dimple Mehta, Printing Press **Amba offset:-** Parshwanath Chembers, Usmanpura, Ahmedabad-14 and published at Mahavideh Foundation, 5, Mamtapark Society, Bh. Navgujarat C